Indian Journal of Modern Research and Reviews

This Journal is a member of the *'Committee on Publication Ethics'*

Online ISSN:2584-184X

Research Article

संस्कृतिकरण और जातिगत परिवर्तन: समकालीन भारतीय समाज में सामाजिक असमानता के पुनरुत्पादन का समाजशास्त्रीय विश्लेषण

डॉ. शैलेन्द्र कुमार पाण्डेय

स्वतंत्र शोधकर्ता, समाजशास्त्र, डॉ. राम मनोहर लोहिया अवध विश्वविद्यालय अयोध्या, उत्तर प्रदेश, भारत

Corresponding Author: * डॉ. शैलेन्द्र कुमार पाण्डेय

DOI: https://doi.org/10.5281/zenodo.20133319

सारांश

समकालीन भारतीय समाज में जाति व्यवस्था को अक्सर परिवर्तनशील माना जाता है, जहाँ संस्कृतिकरण को सामाजिक उन्नयन के एक प्रमुख साधन के रूप में देखा गया है। एम. एन. श्रीनिवास के अनुसार, निम्न जातियाँ उच्च जातियों की जीवनशैली, रीति-रिवाजों और मूल्यों को अपनाकर अपनी सामाजिक स्थिति में सुधार का प्रयास करती हैं। पहली दृष्टि में यह प्रक्रिया सामाजिक गतिशीलता और परिवर्तन का संकेत देती है। हालाँकि, यह अध्ययन इस धारणा को सतही मानते हुए एक आलोचनात्मक दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है। यहाँ तर्क यह है कि संस्कृतिकरण के माध्यम से होने वाला परिवर्तन अधिकतर प्रतीकात्मक होता है, जबकि सामाजिक संरचना में निहित असमानताएँ यथावत बनी रहती हैं। इस संदर्भ में पियरे बॉर्डियू के सांस्कृतिक पुनरुत्पादन के सिद्धांत के आधार पर यह समझने का प्रयास किया गया है कि किस प्रकार सांस्कृतिक प्रक्रियाएँ स्वयं असमानता को बनाए रखने का कार्य करती हैं। द्वितीयक स्रोतों पर आधारित यह अध्ययन निष्कर्ष निकालता है कि संस्कृतिकरण, परिवर्तन का आभास तो उत्पन्न करता है, परंतु वास्तव में यह सामाजिक असमानता के पुनरुत्पादन की प्रक्रिया को ही मजबूत करता है। इस प्रकार, यह शोधपत्र जातिगत परिवर्तन के विमर्श को एक नए, आलोचनात्मक परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत करने का प्रयास करता है।

Manuscript Information

- **ISSN No:** 2584-184X
- **Received:** 04-04-2026
- **Accepted:** 27-04-2026
- **Published:** 12-05-2026
- **MRR:**4(5); 2026: 54-60
- **©2026, All Rights Reserved**
- **Plagiarism Checked:** Yes
- **Peer Review Process:** Yes

How to Cite this Article

पाण्डेय श क. संस्कृतिकरण और जातिगत परिवर्तन: समकालीन भारतीय समाज में सामाजिक असमानता के पुनरुत्पादन का समाजशास्त्रीय विश्लेषण. Indian J Mod Res Rev. 2026;4(5):54-60.

Access this Article Online

www.mrrjournal.in

मुख्य शब्द: संस्कृतिकरण, जातिगत परिवर्तन, सामाजिक असमानता, सांस्कृतिक पुनरुत्पादन, सामाजिक गतिशीलता

© 2026 डॉ. शैलेन्द्र कुमार पाण्डेय. This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution 4.0 International License (CC BY NC ND).https://creativecommons.org/licenses/by/4.0/

1. प्रस्तावना

भारतीय समाज में जाति व्यवस्था एक ऐसी ऐतिहासिक और संरचनात्मक संस्था रही है, जिसने सामाजिक जीवन के लगभग सभी आयामों, जैसे सामाजिक स्तरीकरण, संसाधनों का वितरण, सांस्कृतिक प्रथाएँ और सामूहिक पहचान को गहराई से प्रभावित किया है। परंपरागत दृष्टिकोण में जाति को एक स्थिर और अपरिवर्तनीय व्यवस्था के रूप में देखा गया, जहाँ जन्म के आधार पर व्यक्ति की सामाजिक स्थिति निर्धारित होती थी। किंतु आधुनिक समाजशास्त्रीय अध्ययनों ने इस धारणा को चुनौती देते हुए यह स्थापित किया है कि जाति व्यवस्था पूर्णतः स्थिर नहीं है, बल्कि इसमें परिवर्तन और गतिशीलता के विविध रूप विद्यमान हैं।

इसी संदर्भ में एम. एन. श्रीनिवास द्वारा प्रतिपादित संस्कृतिकरण की अवधारणा जिसे सर्वप्रथम उन्होंने ब्रह्मणीकरण कहा था, विशेष महत्व रखती है। श्रीनिवास के अनुसार, संस्कृतिकरण वह प्रक्रिया है जिसके माध्यम से निम्न जातियाँ उच्च जातियों की जीवनशैली, आचार-व्यवहार, धार्मिक अनुष्ठानों और मूल्यों को अपनाकर अपनी सामाजिक स्थिति को उन्नत करने का प्रयास करती हैं। इस प्रक्रिया को लंबे समय तक भारतीय समाज में सामाजिक परिवर्तन और गतिशीलता के एक महत्वपूर्ण साधन के रूप में स्वीकार किया गया। संस्कृतिकरण यह संकेत देता है कि जाति व्यवस्था में पूर्ण कठोरता नहीं है, बल्कि सांस्कृतिक अनुकरण के माध्यम से सीमित स्तर पर परिवर्तन संभव है।

हालाँकि, समकालीन समाजशास्त्रीय विमर्श में इस अवधारणा का आलोचनात्मक पुनर्मूल्यांकन किया जा रहा है। कई विद्वानों का मत है कि संस्कृतिकरण के माध्यम से प्राप्त होने वाला परिवर्तन मुख्यतः प्रतीकात्मक होता है, न कि संरचनात्मक। अर्थात्, निम्न जातियाँ उच्च जातियों की सांस्कृतिक प्रथाओं को अपनाकर अपनी सामाजिक पहचान में परिवर्तन का आभास उत्पन्न तो करती हैं, किंतु इससे सामाजिक शक्ति-संबंधों और संसाधनों के असमान वितरण में कोई मौलिक बदलाव नहीं आता। इस प्रकार, संस्कृतिकरण सामाजिक असमानता को समाप्त करने के बजाय उसे नए रूप में बनाए रखने की प्रक्रिया का हिस्सा भी बन सकता है।

इस संदर्भ में पियरे बॉर्डियू का सांस्कृतिक पुनरुत्पादन का सिद्धांत विशेष रूप से प्रासंगिक हो जाता है। बॉर्डियू के अनुसार, समाज में असमानताएँ केवल आर्थिक संसाधनों के माध्यम से ही नहीं, बल्कि सांस्कृतिक पूँजी, शैक्षिक अवसरों और सामाजिक आदतों (हैबिटस) के माध्यम से भी पीढ़ी दर पीढ़ी पुनरुत्पादित होती हैं। यह दृष्टिकोण इस बात को समझने में सहायक है कि किस प्रकार संस्कृतिकरण जैसी प्रक्रियाएँ, जो सतही रूप से परिवर्तन का संकेत देती हैं, वास्तव में प्रभुत्वशाली सांस्कृतिक मूल्यों को वैधता प्रदान करके असमानता को स्थायी बना सकती हैं।

समकालीन भारतीय समाज में वैश्वीकरण, शहरीकरण और शिक्षा के विस्तार के बावजूद, जातिगत असमानताएँ विभिन्न रूपों में विद्यमान हैं। ऐसे में यह प्रश्न अत्यंत महत्वपूर्ण हो जाता है कि क्या संस्कृतिकरण वास्तव में सामाजिक गतिशीलता को बढ़ावा देता है या यह केवल असमानता के पुनरुत्पादन को एक नया सांस्कृतिक रूप प्रदान करता है।

2. साहित्य समीक्षा

श्रीनिवास (1966) एम. एन. श्रीनिवास का कार्य भारतीय समाज में सामाजिक परिवर्तन को समझने के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण माना जाता है। अपनी प्रसिद्ध कृति "Social Change in Modern India" (1966) में उन्होंने "संस्कृतिकरण" की अवधारणा प्रस्तुत की, जिसके माध्यम से निम्न जातियाँ उच्च जातियों के रीति-रिवाजों, जीवनशैली, धार्मिक प्रथाओं तथा मूल्यों को अपनाकर अपनी सामाजिक स्थिति को उन्नत करने का प्रयास करती हैं। श्रीनिवास के अनुसार, यह प्रक्रिया सामाजिक गतिशीलता का एक महत्वपूर्ण साधन है और यह इस धारणा को चुनौती देती है कि जाति व्यवस्था पूर्णतः स्थिर और अपरिवर्तनीय है। उन्होंने यह भी स्पष्ट किया कि संस्कृतिकरण केवल सांस्कृतिक अनुकरण तक सीमित नहीं है, बल्कि यह सामाजिक मान्यता प्राप्त करने का एक रणनीतिक प्रयास भी है। इस प्रक्रिया में निम्न जातियाँ प्रतीकात्मक रूप से उच्च जातियों की पहचान और व्यवहार को भी अपनाती हैं, जिससे वे अपनी सामाजिक प्रतिष्ठा में वृद्धि करने का प्रयास करती हैं। हालांकि, इस प्रक्रिया की सफलता उस व्यापक सामाजिक स्वीकृति पर निर्भर करती है, जिसमें यह परिवर्तन घटित होता है। श्रीनिवास ने यह भी संकेत दिया कि संस्कृतिकरण एक धीमी और दीर्घकालिक प्रक्रिया है, जिसमें अक्सर कई पीढ़ियों का समय लगता है। इसके बावजूद, इस अवधारणा की एक महत्वपूर्ण सीमा यह है कि यह मुख्यतः सांस्कृतिक स्तर पर परिवर्तन को दर्शाती है और आर्थिक तथा राजनीतिक संरचनाओं में निहित असमानताओं के पुनरुत्पादन को पर्याप्त रूप से संबोधित नहीं करती। इस प्रकार, श्रीनिवास का अध्ययन इस शोध के लिए एक आधारभूत सैद्धांतिक ढाँचा प्रदान करता है, जिसके माध्यम से संस्कृतिकरण की प्रक्रिया का आलोचनात्मक विश्लेषण किया जा सकता है।

बॉर्डियू (1986) [3] पियरे बॉर्डियू का कार्य सामाजिक असमानता के अध्ययन में एक अत्यंत महत्वपूर्ण सैद्धांतिक योगदान प्रदान करता है। अपने प्रसिद्ध निबंध "The Forms of Capital" (1986) में उन्होंने यह स्पष्ट किया कि समाज में असमानताएँ केवल आर्थिक संसाधनों के असमान वितरण के कारण नहीं होतीं, बल्कि वे सांस्कृतिक पूँजी, सामाजिक पूँजी और प्रतीकात्मक पूँजी के माध्यम से भी निर्मित और पुनरुत्पादित होती हैं। बॉर्डियू के अनुसार, सांस्कृतिक पूँजी में ज्ञान, शिक्षा, भाषा शैली, अभिरुचियाँ तथा व्यवहारिक आदतें (हैबिटस) शामिल होती हैं, जो व्यक्तियों को समाज में विशिष्ट पहचान और प्रतिष्ठा प्रदान करती हैं। उन्होंने यह तर्क दिया कि ये पूँजियाँ परिवार, शिक्षा प्रणाली और सामाजिक संस्थाओं के माध्यम से पीढ़ी दर पीढ़ी स्थानांतरित होती हैं, जिससे सामाजिक असमानता का पुनरुत्पादन निरंतर बना रहता है। विशेष रूप से शिक्षा प्रणाली को उन्होंने एक ऐसे माध्यम के रूप में देखा, जो प्रभुत्वशाली वर्ग के सांस्कृतिक मूल्यों को वैधता प्रदान करती है और उन्हें सामान्य मानक के रूप में स्थापित करती है। यह सिद्धांत संस्कृतिकरण की अवधारणा को समझने के लिए अत्यंत उपयोगी है, क्योंकि यह दर्शाता है कि निम्न जातियों द्वारा उच्च जातियों की संस्कृति को अपनाना वास्तव में प्रभुत्वशाली सांस्कृतिक मानदंडों को स्वीकार करना है। इस प्रक्रिया में सतही सामाजिक गतिशीलता दिखाई देती है, किंतु संरचनात्मक असमानताएँ बनी रहती हैं। अतः बॉर्डियू का दृष्टिकोण इस शोध के लिए एक सशक्त आलोचनात्मक आधार प्रदान करता है, जो संस्कृतिकरण और सामाजिक असमानता के पुनरुत्पादन के बीच गहरे संबंध को स्पष्ट करने में सहायक सिद्ध होता है।

© 2026 डॉ. शैलेन्द्र कुमार पाण्डेय. This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution 4.0 International License (CC BY NC ND).https://creativecommons.org/licenses/by/4.0/

अम्बेडकर (1944) भीम राव अम्बेडकर जी की "Annihilation of Caste" भारतीय समाज में जाति व्यवस्था की एक गहन, तार्किक और आलोचनात्मक व्याख्या प्रस्तुत करता है। अम्बेडकर के अनुसार, जाति व्यवस्था केवल एक सामाजिक विभाजन की प्रणाली नहीं है, बल्कि यह एक ऐसी संरचनात्मक व्यवस्था है जो असमानता, शोषण और सामाजिक बहिष्करण को संस्थागत रूप प्रदान करती है। उन्होंने यह स्पष्ट किया कि जाति व्यवस्था व्यक्ति की सामाजिक स्थिति को जन्म के आधार पर निर्धारित करती है, जिससे सामाजिक गतिशीलता बाधित होती है और निम्न जातियों को शिक्षा, रोजगार तथा सामाजिक प्रतिष्ठा जैसे महत्वपूर्ण अवसरों से वंचित रहना पड़ता है। अम्बेडकर ने यह तर्क दिया कि जाति व्यवस्था का आधार धार्मिक और सांस्कृतिक मान्यताओं में निहित है, जो इसे वैधता प्रदान करती हैं। इसी कारण, उन्होंने केवल सांस्कृतिक सुधारों या संस्कृतिकरण जैसी प्रक्रियाओं को अपर्याप्त माना। उनके अनुसार, संस्कृतिकरण केवल सतही परिवर्तन उत्पन्न करता है और यह प्रभुत्वशाली सामाजिक संरचनाओं तथा शक्ति-संबंधों को चुनौती नहीं देता। इस प्रकार, यह प्रक्रिया असमानता को समाप्त करने के बजाय उसे बनाए रखने में सहायक हो सकती है। अम्बेडकर ने सामाजिक समानता और न्याय की स्थापना के लिए जाति व्यवस्था के पूर्ण उन्मूलन की आवश्यकता पर बल दिया। उनका मानना था कि जब तक समाज में समानता, स्वतंत्रता और बंधुत्व के सिद्धांतों को व्यवहार में नहीं लाया जाएगा, तब तक वास्तविक सामाजिक परिवर्तन संभव नहीं है। अतः अम्बेडकर का दृष्टिकोण इस शोध के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है, क्योंकि यह संस्कृतिकरण की सीमाओं को उजागर करते हुए सामाजिक असमानता के संरचनात्मक पुनरुत्पादन को समझने का एक सशक्त आलोचनात्मक आधार प्रदान करता है।

जोधका (2015) ने अपनी पुस्तक "Caste in Contemporary India" (2015) में आधुनिक भारतीय समाज में जाति के बदलते स्वरूप का गहन समाजशास्त्रीय विश्लेषण प्रस्तुत किया है। उनके अनुसार, यद्यपि आधुनिकीकरण, शहरीकरण, औद्योगिकीकरण तथा शिक्षा के विस्तार ने पारंपरिक सामाजिक संरचनाओं में परिवर्तन लाया है, फिर भी जातिगत असमानताएँ पूरी तरह समाप्त नहीं हुई हैं। जोधका का तर्क है कि जाति अब केवल ग्रामीण या पारंपरिक संदर्भों तक सीमित नहीं रही, बल्कि यह आधुनिक शहरी जीवन, शिक्षा संस्थानों, रोजगार बाजार और राजनीतिक प्रक्रियाओं में भी सक्रिय रूप से प्रभाव डालती है। वे यह भी स्पष्ट करते हैं कि जातिगत पहचान आज भी सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक अवसरों तक पहुँच को प्रभावित करती है। उदाहरण के रूप में, रोजगार के क्षेत्र में भेदभाव, सामाजिक नेटवर्क तक असमान पहुँच तथा सांस्कृतिक पूँजी की कमी निम्न जातियों की प्रगति में बाधा उत्पन्न करती है। जोधका के अनुसार, जातिगत असमानता अब प्रत्यक्ष रूप से ही नहीं, बल्कि सूक्ष्म और अप्रत्यक्ष रूपों में भी प्रकट होती है, जैसे कि सामाजिक दूरी, प्रतीकात्मक बहिष्करण और सांस्कृतिक हीनता की भावना। उनका अध्ययन यह इंगित करता है कि सामाजिक परिवर्तन के बावजूद जाति एक जीवंत और अनुकूलनशील संस्था बनी हुई है, जो नए सामाजिक-आर्थिक संदर्भों में स्वयं को पुनर्गठित करती रहती है। इस प्रकार, जातिगत असमानता केवल बनी ही नहीं रहती, बल्कि नए रूपों में पुनरुत्पादित भी होती है। अतः जोधका का दृष्टिकोण इस शोध के लिए अत्यंत प्रासंगिक है, क्योंकि यह समकालीन भारतीय समाज में असमानता के पुनरुत्पादन को समझने के लिए एक सुदृढ़ विश्लेषणात्मक आधार प्रदान करता है।

गुप्ता (2000) [8] दीपांकर गुप्ता ने अपनी पुस्तक "Interrogating Caste: Understanding Hierarchy and Difference in Indian Society" (2000) में जाति व्यवस्था के आधुनिक स्वरूप का गहन विश्लेषण प्रस्तुत किया है। गुप्ता के अनुसार, आधुनिक भारत में जाति का प्रभाव समाप्त नहीं हुआ है, बल्कि यह नए सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक संदर्भों में पुनः परिभाषित हो रहा है। वे यह तर्क देते हैं कि जाति अब केवल एक पारंपरिक सामाजिक संस्था नहीं रह गई है, बल्कि यह आधुनिक संस्थाओं जैसे लोकतांत्रिक राजनीति, शिक्षा प्रणाली, रोजगार बाजार और शहरी जीवन में भी सक्रिय भूमिका निभा रही है। गुप्ता का मानना है कि आधुनिकता और विकास की प्रक्रियाएँ जाति को समाप्त करने के बजाय उसे नए रूपों में पुनर्गठित करती हैं। उदाहरणस्वरूप, चुनावी राजनीति में जातिगत पहचान एक महत्वपूर्ण संसाधन के रूप में उभरती है, जो सामाजिक शक्ति और प्रतिनिधित्व को प्रभावित करती है। इसी प्रकार, शिक्षा और रोजगार के क्षेत्रों में भी जाति अप्रत्यक्ष रूप से अवसरों के वितरण को प्रभावित करती है। उनका अध्ययन यह स्पष्ट करता है कि जातिगत असमानता केवल परंपरागत संरचनाओं तक सीमित नहीं है, बल्कि यह आधुनिक सामाजिक प्रक्रियाओं के माध्यम से निरंतर पुनरुत्पादित होती रहती है। गुप्ता इस बात पर बल देते हैं कि सामाजिक परिवर्तन के बावजूद असमानता का स्वरूप बदल सकता है, लेकिन उसका अस्तित्व बना रहता है। अतः गुप्ता का दृष्टिकोण इस शोध के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है, क्योंकि यह दर्शाता है कि संस्कृतिकरण जैसी प्रक्रियाएँ आधुनिक संदर्भ में भी असमानता को समाप्त करने के बजाय उसे नए रूपों में बनाए रखने में योगदान दे सकती हैं।

गुरु (2009) [9] गोपाल गुरु ने अपनी पुस्तक "Humiliation: Claims and Context" (2009) में जाति आधारित अपमान और सामाजिक बहिष्करण का गहन विश्लेषण प्रस्तुत किया है। गुरु के अनुसार, जातिगत असमानता केवल आर्थिक या संरचनात्मक स्तर तक सीमित नहीं है, बल्कि यह सांस्कृतिक, नैतिक और मनोवैज्ञानिक आयामों में भी गहराई से निहित है। उनका तर्क है कि निम्न जातियों के साथ होने वाला अपमान सामाजिक संरचना का एक अभिन्न अंग है, जो असमानता को बनाए रखने और उसे वैधता प्रदान करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। गुरु यह स्पष्ट करते हैं कि अपमान केवल व्यक्तिगत अनुभव नहीं है, बल्कि यह एक सामाजिक प्रक्रिया है, जिसके माध्यम से प्रभुत्वशाली वर्ग अपनी श्रेष्ठता को स्थापित करता है और निम्न वर्गों को अधीन स्थिति में बनाए रखता है। इस प्रकार, अपमान सामाजिक संबंधों, आत्मसम्मान और पहचान को गहराई से प्रभावित करता है, जिससे निम्न जातियों की सामाजिक गतिशीलता सीमित हो जाती है। उनका अध्ययन यह भी इंगित करता है कि असमानता केवल संसाधनों के असमान वितरण से नहीं, बल्कि सामाजिक अनुभवों, प्रतीकात्मक बहिष्करण और सांस्कृतिक प्रक्रियाओं से भी उत्पन्न होती है। अतः गुरु का दृष्टिकोण इस शोध के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है, क्योंकि यह असमानता के पुनरुत्पादन के उन सूक्ष्म और अनुभवजन्य आयामों को उजागर करता है, जो

© 2026 डॉ. शैलेन्द्र कुमार पाण्डेय. This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution 4.0 International License (CC BY NC ND).https://creativecommons.org/licenses/by/4.0/

संस्कृतिकरण जैसी प्रक्रियाओं के विश्लेषण में अक्सर अनदेखे रह जाते हैं।

थोरात एवं न्यूमैन (2010) [16] सुखदेव थोरात और कैथरीन एस. न्यूमैन की पुस्तक "Blocked by Caste: Economic Discrimination in Modern India" (2010) आधुनिक भारत में जातिगत भेदभाव का एक महत्वपूर्ण अनुभवजन्य अध्ययन प्रस्तुत करती है। इस अध्ययन में उन्होंने श्रम बाजार में जाति आधारित भेदभाव की वास्तविकता को उजागर किया है। उनके शोध का मुख्य निष्कर्ष यह है कि समान शैक्षिक योग्यता और कौशल होने के बावजूद निम्न जातियों के व्यक्तियों को रोजगार के अवसरों में भेदभाव का सामना करना पड़ता है। थोरात और न्यूमैन ने फील्ड एक्सपेरिमेंट्स के माध्यम से यह सिद्ध किया कि निजी क्षेत्र में भी जातिगत पूर्वाग्रह मौजूद हैं, जो भर्ती प्रक्रियाओं को प्रभावित करते हैं। उदाहरण के लिए, समान योग्यता वाले उम्मीदवारों में से उच्च जातियों के उम्मीदवारों को अधिक अवसर प्राप्त होते हैं, जबकि निम्न जातियों के उम्मीदवारों को अनदेखा कर दिया जाता है। यह अध्ययन यह दर्शाता है कि जातिगत असमानता केवल पारंपरिक या ग्रामीण संदर्भों तक सीमित नहीं है, बल्कि यह आधुनिक आर्थिक संस्थानों और शहरी जीवन में भी सक्रिय है। अतः यह शोध इस बात का ठोस अनुभवजन्य प्रमाण प्रदान करता है कि सामाजिक असमानता आज भी संरचनात्मक रूप से विद्यमान है और यह विभिन्न संस्थागत प्रक्रियाओं के माध्यम से निरंतर पुनरुत्पादित होती रहती है। इस प्रकार, थोरात का अध्ययन इस शोध के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण आधार प्रस्तुत करता है।

सैद्धान्तिक परिप्रेक्ष्य

प्रस्तुत अध्ययन का सैद्धान्तिक आधार सामाजिक परिवर्तन और सामाजिक असमानता के अंतर्संबंध को समझने पर केंद्रित है। विशेष रूप से, यह अध्ययन इस प्रश्न की पड़ताल करता है कि क्या सांस्कृतिक परिवर्तन वास्तव में सामाजिक समानता की ओर ले जाता है, अथवा वह असमानता के पुनरुत्पादन का एक माध्यम भी बन सकता है।

- **संस्कृतिकरण का सिद्धांत: संस्कृतिकरण को इस अध्ययन में एक ऐसी सामाजिक प्रक्रिया के**
  रूप में समझा गया है, जिसके माध्यम से निम्न सामाजिक समूह उच्च सामाजिक समूहों के सांस्कृतिक व्यवहार, रीति-रिवाज, जीवनशैली और धार्मिक प्रथाओं को अपनाकर अपनी सामाजिक स्थिति को उन्नत करने का प्रयास करते हैं। यह प्रक्रिया सामाजिक गतिशीलता की संभावना को इंगित करती है और यह दर्शाती है कि सामाजिक संरचना पूर्णतः स्थिर नहीं होती, बल्कि उसमें परिवर्तन की संभावनाएँ विद्यमान रहती हैं। संस्कृतिकरण मुख्यतः प्रतीकात्मक परिवर्तन पर आधारित होता है, जिसमें सामाजिक प्रतिष्ठा और मान्यता प्राप्त करने का प्रयास किया जाता है। यह प्रक्रिया सामाजिक पदानुक्रम में स्थिति सुधारने का एक वैकल्पिक मार्ग प्रदान करती है, विशेषकर उन समूहों के लिए जिनके पास आर्थिक संसाधनों या राजनीतिक शक्ति तक सीमित पहुँच होती है। हालाँकि, यह परिवर्तन प्रायः सांस्कृतिक स्तर तक सीमित रहता है और यह आवश्यक नहीं कि इससे सामाजिक-आर्थिक संरचनाओं में वास्तविक परिवर्तन हो। इस दृष्टि से, संस्कृतिकरण को आंशिक परिवर्तन की प्रक्रिया के रूप में देखा जा सकता है, जो सामाजिक पहचान को तो प्रभावित करती है, परंतु संसाधनों के वितरण और शक्ति-संबंधों को मूलतः नहीं बदलती। इस प्रकार, यह सिद्धांत इस अध्ययन में सामाजिक परिवर्तन की प्रकृति को समझने का आधार प्रदान करता है, साथ ही यह प्रश्न उठाता है कि क्या सांस्कृतिक परिवर्तन वास्तविक सामाजिक समानता की ओर ले जाता है या केवल प्रतीकात्मक उन्नयन तक सीमित रहता है।

- **सांस्कृतिक पूँजी एवं पुनरुत्पादन का सिद्धांत: सांस्कृतिक पूँजी और पुनरुत्पादन का सिद्धांत**
  इस बात पर केंद्रित है कि समाज में असमानताएँ केवल आर्थिक कारणों से नहीं, बल्कि सांस्कृतिक प्रक्रियाओं के माध्यम से भी निर्मित और स्थायी बनाई जाती हैं। इस दृष्टिकोण में संस्कृति को एक संसाधन के रूप में देखा जाता है, जिसमें भाषा, शिक्षा, व्यवहार, अभिरुचियाँ और सामाजिक शिष्टाचार जैसे तत्व शामिल होते हैं। ये सांस्कृतिक तत्व सभी सामाजिक समूहों में समान रूप से उपलब्ध नहीं होते, बल्कि कुछ समूहों के पास इनकी अधिक पहुँच होती है। परिणामस्वरूप, जिनके पास अधिक सांस्कृतिक पूँजी होती है, वे सामाजिक संस्थाओं विशेषकर शिक्षा और रोजगार में अधिक सफल होते हैं। इस प्रकार, असमानता केवल बनी नहीं रहती, बल्कि पीढ़ी दर पीढ़ी पुनरुत्पादित होती रहती है। यह सिद्धांत यह भी स्पष्ट करता है कि प्रभुत्वशाली सांस्कृतिक मानदंड समाज में "सामान्य" और "श्रेष्ठ" के रूप में स्थापित हो जाते हैं। अन्य समूह इन मानदंडों को अपनाने का प्रयास करते हैं, जिससे वे अनजाने में उसी व्यवस्था को स्वीकार कर लेते हैं, जो असमानता को बनाए रखती है।

- **संरचनात्मक असमानता का सिद्धांत: संरचनात्मक असमानता का सिद्धांत इस विचार पर**
  आधारित है कि सामाजिक असमानता केवल व्यक्तिगत या सांस्कृतिक भिन्नताओं का परिणाम नहीं है, बल्कि यह सामाजिक संरचनाओं, संस्थाओं और शक्ति-संबंधों में गहराई से निहित होती है। यह दृष्टिकोण इस बात पर बल देता है कि समाज में संसाधनों, अवसरों और शक्ति का वितरण असमान होता है, जो कुछ समूहों को लाभान्वित करता है और अन्य को वंचित रखता है। इस सिद्धांत के अनुसार, सामाजिक संस्थाएँ जैसे शिक्षा, अर्थव्यवस्था, राजनीति और सामाजिक व्यवस्था ऐसे ढंग से कार्य करती हैं कि वे मौजूदा असमानताओं को बनाए रखती हैं। परिणामस्वरूप, वंचित समूहों के लिए ऊपर उठने के अवसर सीमित हो जाते हैं, भले ही वे सांस्कृतिक रूप से स्वयं को अनुकूलित करने का प्रयास करें। यह दृष्टिकोण यह भी स्पष्ट करता है कि असमानता केवल संसाधनों की कमी तक सीमित नहीं है, बल्कि यह सामाजिक बहिष्करण, अवसरों की असमानता और संस्थागत भेदभाव के रूप में भी प्रकट होती है।

© 2026 डॉ. शैलेन्द्र कुमार पाण्डेय. This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution 4.0 International License (CC BY NC ND).https://creativecommons.org/licenses/by/4.0/

3. शोध उद्देश्य

- समकालीन भारतीय समाज में संस्कृतिकरण की प्रक्रिया और उसके स्वरूप का विश्लेषण करना।
- जातिगत परिवर्तन की प्रकृति का अध्ययन करना तथा उसके सामाजिक प्रभावों को समझना।
- संस्कृतिकरण और सामाजिक असमानता के मध्य संबंध का समाजशास्त्रीय विश्लेषण करना।
- सामाजिक असमानता के पुनरुत्पादन की प्रक्रियाओं का अध्ययन करना।

4. शोध पद्धति

प्रस्तुत शोध पत्र पूर्णतः द्वितीयक स्रोतों पर आधारित है, जिसमें समकालीन भारतीय समाज में संस्कृतिकरण, जातिगत परिवर्तन तथा सामाजिक असमानता के पुनरुत्पादन का समाजशास्त्रीय विश्लेषण किया गया है। इस अध्ययन के लिए वर्णनात्मक एवं विश्लेषणात्मक शोध अभिकल्प को अपनाया गया है, जिससे विषय की व्यापक और गहन समझ विकसित की जा सके। इस शोध में प्रयुक्त आँकड़े एवं तथ्य विभिन्न द्वितीयक स्रोतों जैसे प्रकाशित शोध पत्रों, पुस्तकों तथा प्रतिष्ठित जर्नलों से संकलित किए गए हैं। संकलित सामग्री का विश्लेषण गुणात्मक पद्धति के माध्यम से किया गया है, जिसमें विभिन्न सिद्धांतों, अवधारणाओं और शोध निष्कर्षों की व्याख्यात्मक समीक्षा की गई है। इस प्रक्रिया में यह समझने का प्रयास किया गया है कि संस्कृतिकरण की प्रक्रिया किस प्रकार सामाजिक असमानता को प्रभावित करती है तथा किन परिस्थितियों में यह असमानता के पुनरुत्पादन का कारण बनती है। अतः यह शोध पद्धति विषय के सैद्धान्तिक एवं विश्लेषणात्मक अध्ययन के लिए उपयुक्त आधार प्रदान करती है, जिससे समकालीन सामाजिक संरचना की जटिलताओं को समझा जा सकता है।

समकालीन भारतीय समाज में संस्कृतिकरण की प्रक्रिया और उसका स्वरूप:

समकालीन भारतीय समाज में संस्कृतिकरण की प्रक्रिया सामाजिक परिवर्तन के एक महत्वपूर्ण आयाम के रूप में देखी जाती है। इस प्रक्रिया के अंतर्गत निम्न जातियाँ उच्च जातियों की जीवनशैली, सांस्कृतिक परंपराओं, धार्मिक व्यवहार, रीति-रिवाजों तथा सामाजिक मूल्यों को अपनाकर अपनी सामाजिक स्थिति को उन्नत करने का प्रयास करती हैं। भारतीय समाज की पारंपरिक संरचना में जाति व्यक्ति की सामाजिक पहचान और प्रतिष्ठा का प्रमुख आधार रही है। ऐसी स्थिति में उच्च जातियों के सांस्कृतिक व्यवहारों का अनुकरण सामाजिक मान्यता प्राप्त करने का एक माध्यम बन जाता है। परंपरागत भारतीय समाज में संस्कृतिकरण का स्वरूप मुख्यतः ग्रामीण क्षेत्रों में अधिक स्पष्ट दिखाई देता था, जहाँ सामाजिक संबंध जातिगत संरचना पर आधारित थे। ग्रामीण समुदायों में भोजन, पहनावा, धार्मिक अनुष्ठान तथा सामाजिक व्यवहार जातिगत पहचान से गहराई से जुड़े हुए थे। निम्न जातियाँ उच्च जातियों की जीवनशैली को अपनाकर अपने सामाजिक दर्जे में सुधार लाने का प्रयास करती थीं। किंतु आधुनिक समय में शिक्षा के प्रसार, शहरीकरण, औद्योगिकीकरण तथा संचार माध्यमों के विस्तार ने इस प्रक्रिया के स्वरूप में परिवर्तन उत्पन्न किया है। अब संस्कृतिकरण केवल धार्मिक और सांस्कृतिक अनुकरण तक सीमित नहीं है, बल्कि यह शिक्षा, पेशागत स्थिति और आधुनिक जीवनशैली से भी जुड़ गया है। समकालीन संदर्भ में कई सामाजिक समूह अपनी सामाजिक पहचान को पुनर्गठित करने के लिए मध्यम वर्गीय मूल्यों, औपचारिक शिक्षा तथा शहरी व्यवहार को अपनाने लगे हैं। उदाहरणस्वरूप, विवाह प्रथाओं में परिवर्तन, पारंपरिक व्यवसायों से दूरी, शाकाहार को अपनाना तथा आधुनिक शिक्षा की ओर बढ़ती रुचि इस प्रक्रिया के नए स्वरूप को दर्शाती है। कई बार यह परिवर्तन सामाजिक सम्मान और सार्वजनिक स्वीकृति प्राप्त करने की रणनीति के रूप में भी कार्य करता है। इसके अतिरिक्त, आधुनिक राजनीतिक प्रक्रियाओं और आरक्षण जैसी नीतियों ने भी जातिगत समूहों में नई सामाजिक चेतना उत्पन्न की है। कई समुदाय अपनी सामूहिक पहचान को पुनः परिभाषित करने का प्रयास कर रहे हैं, जिससे संस्कृतिकरण केवल व्यक्तिगत न रहकर सामुदायिक स्तर की प्रक्रिया भी बन गया है। हालाँकि, संस्कृतिकरण की प्रक्रिया सभी सामाजिक समूहों में समान रूप से प्रभावी नहीं होती। जिन समूहों के पास शिक्षा, आर्थिक संसाधन तथा सामाजिक पूँजी की उपलब्धता अधिक होती है, वे इस प्रक्रिया का अपेक्षाकृत अधिक लाभ उठा पाते हैं। इसके विपरीत, संसाधनों से वंचित समूहों के लिए केवल सांस्कृतिक अनुकरण सामाजिक उन्नति सुनिश्चित नहीं कर पाता, जिसके कारण सामाजिक और आर्थिक असमानताएँ बनी रहती हैं।

जातिगत परिवर्तन की प्रकृति एवं उसके सामाजिक प्रभाव:

समकालीन भारतीय समाज में जातिगत परिवर्तन एक जटिल तथा बहुआयामी सामाजिक प्रक्रिया के रूप में उभरकर सामने आया है। पारंपरिक भारतीय समाज में जाति एक कठोर और स्थिर सामाजिक व्यवस्था के रूप में कार्य करती थी, जिसमें व्यक्ति की सामाजिक स्थिति, व्यवसाय, विवाह संबंध तथा सामाजिक प्रतिष्ठा जन्म के आधार पर निर्धारित होती थी। उस समय सामाजिक गतिशीलता की संभावनाएँ अत्यंत सीमित थीं और जातिगत नियमों का उल्लंघन सामाजिक बहिष्कार का कारण बन सकता था। किंतु आधुनिक समय में सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक परिवर्तनों ने जाति व्यवस्था के स्वरूप में महत्वपूर्ण बदलाव उत्पन्न किए हैं। शिक्षा के प्रसार, शहरीकरण, औद्योगिकीकरण, लोकतांत्रिक व्यवस्था तथा संवैधानिक प्रावधानों ने जातिगत परिवर्तन की प्रक्रिया को गति प्रदान की है। विशेष रूप से स्वतंत्रता के बाद लागू सामाजिक न्याय संबंधी नीतियों, आरक्षण व्यवस्था तथा समानता के संवैधानिक अधिकारों ने निम्न जातियों को शिक्षा, रोजगार और राजनीतिक प्रतिनिधित्व के नए अवसर उपलब्ध कराए। इसके परिणामस्वरूप सामाजिक गतिशीलता की संभावनाएँ बढ़ीं और कई वंचित समूहों ने अपनी सामाजिक स्थिति में सुधार किया। हालाँकि, जातिगत परिवर्तन की प्रकृति पूर्णतः संरचनात्मक परिवर्तन के रूप में दिखाई नहीं देती, बल्कि यह आंशिक और क्रमिक परिवर्तन के रूप में अधिक स्पष्ट होती है। आधुनिक समाज में जाति का प्रत्यक्ष प्रभाव कई क्षेत्रों में कम हुआ है, किंतु इसका अप्रत्यक्ष प्रभाव अब भी व्यापक रूप से विद्यमान है। उदाहरणस्वरूप, विवाह संबंधों, सामाजिक नेटवर्क, राजनीतिक गठबंधनों तथा रोजगार के अवसरों में जाति आज भी एक महत्वपूर्ण कारक के रूप में कार्य करती है। विशेषकर ग्रामीण क्षेत्रों में जातिगत पहचान सामाजिक संबंधों और संसाधनों तक पहुँच को प्रभावित

© 2026 डॉ. शैलेन्द्र कुमार पाण्डेय. This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution 4.0 International License (CC BY NC ND).https://creativecommons.org/licenses/by/4.0/

करती रहती है। जातिगत परिवर्तन के सामाजिक प्रभाव भी मिश्रित प्रकृति के हैं। एक ओर, इस परिवर्तन ने सामाजिक समावेशन, शिक्षा और राजनीतिक जागरूकता को बढ़ावा दिया है, जिससे वंचित समुदायों में आत्मविश्वास और सामाजिक चेतना का विकास हुआ है। दूसरी ओर, जातिगत पहचान आधारित राजनीति, सामाजिक प्रतिस्पर्धा तथा संसाधनों के असमान वितरण ने नई प्रकार की सामाजिक तनाव की स्थितियाँ भी उत्पन्न की हैं। इसके अतिरिक्त, आधुनिक शहरी जीवन में जाति का स्वरूप अधिक सूक्ष्म हो गया है। प्रत्यक्ष भेदभाव में कमी आने के बावजूद सामाजिक दूरी, सांस्कृतिक पूर्वाग्रह और अवसरों की असमानता अभी भी अनेक स्तरों पर दिखाई देती है। इस प्रकार, जातिगत परिवर्तन भारतीय समाज में परिवर्तन और निरंतरता दोनों की प्रक्रिया को एक साथ प्रस्तुत करता है, जहाँ सामाजिक संरचना बदलती भी है और अपने कुछ पारंपरिक तत्वों को बनाए भी रखती है।

संस्कृतिकरण और सामाजिक असमानता के मध्य संबंध:

समकालीन भारतीय समाज में संस्कृतिकरण और सामाजिक असमानता के मध्य संबंध अत्यंत जटिल तथा बहुस्तरीय है। सामान्यतः यह माना जाता है कि संस्कृतिकरण की प्रक्रिया निम्न जातियों को सामाजिक उन्नयन का अवसर प्रदान करती है, क्योंकि वे उच्च जातियों के सांस्कृतिक मानदंडों, जीवनशैली, धार्मिक प्रथाओं तथा सामाजिक व्यवहारों को अपनाकर अपनी सामाजिक स्थिति को सुधारने का प्रयास करती हैं। इस दृष्टि से संस्कृतिकरण सामाजिक गतिशीलता और सामाजिक मान्यता प्राप्त करने का एक माध्यम प्रतीत होता है। भारतीय समाज में लंबे समय तक जातिगत पदानुक्रम ने निम्न जातियों को सीमित सामाजिक अवसर प्रदान किए थे, इसलिए उच्च जातियों की सांस्कृतिक परंपराओं का अनुकरण सामाजिक सम्मान प्राप्त करने की रणनीति के रूप में विकसित हुआ। हालाँकि, गहन समाजशास्त्रीय विश्लेषण यह स्पष्ट करता है कि संस्कृतिकरण और सामाजिक असमानता का संबंध केवल सामाजिक उन्नयन तक सीमित नहीं है, बल्कि इसमें असमानता के पुनर्स्थापन और निरंतरता की प्रवृत्ति भी निहित रहती है। संस्कृतिकरण के माध्यम से निम्न जातियाँ उच्च जातियों के व्यवहार, खान-पान, धार्मिक आचरण तथा जीवन मूल्यों को अपनाती हैं, किंतु इससे सामाजिक संरचना के मूल आधार जैसे आर्थिक संसाधनों का वितरण, शक्ति-संबंध, शिक्षा तक पहुँच तथा संस्थागत अवसर में कोई मौलिक परिवर्तन नहीं होता। परिणामस्वरूप, सांस्कृतिक स्तर पर परिवर्तन दिखाई देने के बावजूद संरचनात्मक असमानताएँ बनी रहती हैं। इसके अतिरिक्त, संस्कृतिकरण की प्रक्रिया में यह धारणा अंतर्निहित रहती है कि उच्च जातियों की संस्कृति श्रेष्ठ और आदर्श है। यह स्थिति प्रभुत्वशाली सांस्कृतिक मूल्यों को वैधता प्रदान करती है तथा सामाजिक पदानुक्रम को अप्रत्यक्ष रूप से मजबूत बनाती है। कई बार निम्न जातियों द्वारा उच्च जातियों की जीवनशैली को अपनाना सामाजिक स्वीकृति प्राप्त करने का माध्यम तो बनता है, किंतु इससे सामाजिक समानता की वास्तविक स्थापना नहीं हो पाती। समकालीन संदर्भ में यह भी देखा जाता है कि संस्कृतिकरण से प्राप्त सामाजिक उन्नति सभी वर्गों के लिए समान रूप से उपलब्ध नहीं होती। जिन समूहों के पास शिक्षा, आर्थिक संसाधन, सामाजिक पूँजी तथा राजनीतिक पहुँच अधिक होती है, वे इस प्रक्रिया का अपेक्षाकृत अधिक लाभ उठा पाते हैं। इसके विपरीत, संसाधनों से वंचित समुदायों के लिए केवल सांस्कृतिक अनुकरण पर्याप्त सिद्ध नहीं होता। आधुनिक शहरी समाज में भी यह संबंध नए रूपों में दिखाई देता है, जहाँ सामाजिक प्रतिष्ठा, भाषा, शिक्षा और उपभोग की शैली सामाजिक पहचान को प्रभावित करती है। इस प्रकार, संस्कृतिकरण एक ओर सामाजिक गतिशीलता की संभावना उत्पन्न करता है, वहीं दूसरी ओर यह सामाजिक असमानता के बने रहने और उसके पुनरुत्पादन में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

सामाजिक असमानता के पुनरुत्पादन की प्रक्रियाएँ:

समकालीन भारतीय समाज में सामाजिक असमानता केवल एक स्थिर सामाजिक स्थिति नहीं है, बल्कि यह निरंतर पुनरुत्पादित होने वाली प्रक्रिया है, जो विभिन्न सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक तथा संस्थागत तंत्रों के माध्यम से संचालित होती है। भारतीय समाज में जाति व्यवस्था इस पुनरुत्पादन की प्रक्रिया का एक प्रमुख आधार रही है। यद्यपि आधुनिकता, शिक्षा, लोकतंत्र तथा संवैधानिक प्रावधानों ने समानता की अवधारणा को मजबूत किया है, फिर भी सामाजिक असमानता नए रूपों में निरंतर बनी हुई है। यह असमानता केवल प्रत्यक्ष भेदभाव तक सीमित नहीं है, बल्कि सामाजिक संरचनाओं और सांस्कृतिक व्यवहारों के माध्यम से पीढ़ी दर पीढ़ी स्थानांतरित होती रहती है। सामाजिक असमानता के पुनरुत्पादन में परिवार एक महत्वपूर्ण संस्था के रूप में कार्य करता है। परिवार के माध्यम से व्यक्ति को जातिगत पहचान, सामाजिक मूल्य, सांस्कृतिक आदतें तथा सामाजिक व्यवहार प्रारंभिक अवस्था से ही प्राप्त होते हैं। इस प्रक्रिया में सामाजिक पदानुक्रम और जातिगत श्रेष्ठता अथवा हीनता की धारणाएँ भी पीढ़ी दर पीढ़ी स्थानांतरित होती रहती हैं। परिणामस्वरूप, सामाजिक विभाजन केवल बाहरी संरचनाओं तक सीमित नहीं रहता, बल्कि व्यक्तियों की मानसिकता और सामाजिक व्यवहार का हिस्सा बन जाता है। शिक्षा प्रणाली भी असमानता के पुनरुत्पादन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। यद्यपि शिक्षा को सामाजिक समानता का माध्यम माना जाता है, किंतु व्यवहारिक स्तर पर संसाधनों, भाषा, सांस्कृतिक पूँजी तथा गुणवत्तापूर्ण शिक्षा तक असमान पहुँच सामाजिक अंतर को बनाए रखती है। उच्च सामाजिक वर्गों और जातियों के बच्चों को बेहतर शैक्षिक अवसर प्राप्त होते हैं, जबकि वंचित समूह अनेक बाधाओं का सामना करते हैं। इससे अवसरों की असमानता बनी रहती है और सामाजिक गतिशीलता सीमित हो जाती है। इसके अतिरिक्त, रोजगार, विवाह संबंध तथा सामाजिक नेटवर्क भी सामाजिक असमानता को बनाए रखने में सहायक होते हैं। कई बार समान योग्यता होने के बावजूद जातिगत पहचान के आधार पर अवसरों में भेदभाव देखा जाता है। विवाह संबंधों में जाति आधारित प्राथमिकता सामाजिक संरचना की निरंतरता को मजबूत करती है। सामाजिक संपर्क और नेटवर्क भी संसाधनों तथा अवसरों तक पहुँच को प्रभावित करते हैं, जिससे कुछ समूहों को अधिक लाभ प्राप्त होता है। संस्कृतिकरण की प्रक्रिया भी इस पुनरुत्पादन से पूर्णतः अलग नहीं है। निम्न जातियों द्वारा उच्च जातियों के सांस्कृतिक मानदंडों को अपनाना सामाजिक सम्मान प्राप्त करने का प्रयास तो होता है, किंतु इससे प्रभुत्वशाली सामाजिक संरचनाओं को अप्रत्यक्ष वैधता भी मिलती है। परिणामस्वरूप, सामाजिक परिवर्तन दिखाई देने के बावजूद असमानता की मूल संरचना बनी रहती है और नए सामाजिक संदर्भों में स्वयं को पुनर्गठित करती रहती है।

© 2026 डॉ. शैलेन्द्र कुमार पाण्डेय. This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution 4.0 International License (CC BY NC ND).https://creativecommons.org/licenses/by/4.0/

5. निष्कर्ष

समकालीन भारतीय समाज में संस्कृतिकरण और जातिगत परिवर्तन की प्रक्रियाएँ सामाजिक परिवर्तन के महत्वपूर्ण संकेत प्रस्तुत करती हैं। शिक्षा, शहरीकरण, लोकतांत्रिक मूल्यों तथा संवैधानिक प्रावधानों के प्रभाव से जाति व्यवस्था के पारंपरिक स्वरूप में परिवर्तन अवश्य दिखाई देता है, किंतु यह परिवर्तन पूर्णतः संरचनात्मक नहीं है। निम्न जातियों द्वारा उच्च जातियों के सांस्कृतिक मानदंडों, जीवनशैली तथा सामाजिक व्यवहारों को अपनाने की प्रक्रिया सामाजिक उन्नयन और मान्यता प्राप्त करने का माध्यम बनती है, परंतु इससे सामाजिक असमानता की मूल संरचना समाप्त नहीं होती। अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि संस्कृतिकरण एक ओर सामाजिक गतिशीलता की संभावना उत्पन्न करता है, वहीं दूसरी ओर यह प्रभुत्वशाली सांस्कृतिक मूल्यों को वैधता प्रदान करके सामाजिक पदानुक्रम को बनाए रखने में भी योगदान देता है। आधुनिक भारतीय समाज में जातिगत परिवर्तन के बावजूद संसाधनों, शिक्षा, रोजगार तथा सामाजिक अवसरों तक पहुँच में असमानता अब भी विद्यमान है। सामाजिक संस्थाएँ जैसे परिवार, शिक्षा प्रणाली, विवाह संबंध तथा सामाजिक नेटवर्क असमानता के पुनरुत्पादन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। यह भी स्पष्ट होता है कि आधुनिकता और विकास की प्रक्रियाएँ जाति को समाप्त करने के बजाय कई बार उसे नए सामाजिक संदर्भों में पुनर्गठित कर देती हैं। परिणामस्वरूप, जातिगत असमानता प्रत्यक्ष के साथ-साथ अप्रत्यक्ष और सांस्कृतिक रूपों में भी बनी रहती है। इस प्रकार, वास्तविक सामाजिक समानता की स्थापना केवल सांस्कृतिक परिवर्तन से संभव नहीं है, बल्कि इसके लिए संरचनात्मक, शैक्षिक, आर्थिक तथा सामाजिक स्तर पर व्यापक परिवर्तन आवश्यक हैं, ताकि सामाजिक न्याय और समान अवसरों की अवधारणा व्यवहारिक रूप से स्थापित हो सके।

संदर्भ सूची

1. Ambedkar BR. Annihilation of caste: The annotated critical edition. Anand S, editor. New Delhi: Navayana Publishing; 2014. Originally published in 1936.
2. Balan B. Making of comfortable exile through sanskritization: reflections on imagination of identity notions in India. Contemporary Voice of Dalit. 2019;10(2):84-93. doi:10.1177/2455328X19859192.
3. Bourdieu P. The forms of capital. In: Richardson JG, editor. Handbook of theory and research for the sociology of education. New York: Greenwood Press; 1986. p. 241-258.
4. Charsley S. Sanskritization: the career of an anthropological theory. Contributions to Indian Sociology. 1998;32(2):527-549. doi:10.1177/006996679803200216.
5. Choudhary S. Social process of change in caste system and the concepts of sanskritisation, westernisation and globalisation in India. International Journal of Research Pedagogy and Technology in Education and Movement Sciences. 2015;4(2):43-54. Available from: https://ijems.net/index.php/ijem/article/view/145/145
6. Dirks NB. Castes of mind: Colonialism and the making of modern India. Princeton: Princeton University Press; 2001.
7. Dumont L. Homo hierarchicus: The caste system and its implications. Sainsbury M, translator. London: Paladin; 1972. Originally published in 1966.
8. Gupta D. Interrogating caste: Understanding hierarchy and difference in Indian society. New Delhi: Penguin Books; 2000.
9. Guru G. Humiliation: Claims and context. New Delhi: Oxford University Press; 2009.
10. Jodhka SS. Ascriptive hierarchies: caste and its reproduction in contemporary India. Current Sociology. 2016;64(2):228-243. doi:10.1177/0011392115614784.
11. Jodhka SS. Caste in contemporary India. 2nd ed. New York: Routledge; 2017.
12. Roy I. A critique of sanskritization from Dalit/caste-subaltern perspective. CASTE: A Global Journal on Social Exclusion. 2021;2(2):315-326. doi:10.26812/caste.v2i2.292.
13. Sengupta S, Guchhait SK. Inequality in contemporary India: does caste still matter? Journal of Developing Societies. 2021;37(1):57-82. doi:10.1177/0169796X21998387.
14. Singh ST. संस्कृतिकरण की अवधारणा. International Education and Research Journal. 2023;9(8). Available from: https://ierj.in/journal/index.php/ierj/article/view/2961
15. Srinivas MN. Social change in modern India. Berkeley: University of California Press; 1966.
16. Thorat S, Newman KS. Blocked by caste: Economic discrimination in modern India. New Delhi: Oxford University Press; 2010.

Creative Commons License

This article is an open-access article distributed under the terms and conditions of the Creative Commons Attribution–Non-commercial–No Derivatives 4.0 International (CC BY-NC-ND 4.0) License. This license permits users to copy and redistribute the material in any medium or format for non-commercial purposes only, provided that appropriate credit is given to the original author(s) and the source. No modifications, adaptations, or derivative works are permitted.

About the Corresponding Author

डॉ. शैलेन्द्र कुमार पाण्डेय समाजशास्त्र के स्वतंत्र शोधकर्ता हैं तथा डॉ. राम मनोहर लोहिया अवध विश्वविद्यालय, अयोध्या, उत्तर प्रदेश से संबद्ध हैं। आपके शोध कार्य सामाजिक परिवर्तन, शिक्षा, ग्रामीण विकास एवं समकालीन सामाजिक मुद्दों पर केंद्रित हैं। आपने विभिन्न राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय संगोष्ठियों तथा शोध पत्रिकाओं में सक्रिय अकादमिक योगदान दिया है।

© 2026 डॉ. शैलेन्द्र कुमार पाण्डेय. This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution 4.0 International License (CC BY NC ND).https://creativecommons.org/licenses/by/4.0/